International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(4): 84-89

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(4): 84-89
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 16-04-2015
Accepted: 15-05-2015

कुसुम मौर्या
दिल्ली विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग

Correspondence:
कुसुम मौर्या
दिल्ली विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग

"काल के वैज्ञानिक सिद्धान्त व भारतीय ग्रंथों में काल की अवधारणा"

कुसुम मौर्या

भारतीय दृष्टि से 'काल' अक्षर तत्त्व (ऊँ) की क्षर क्रिया है, और 'इतिहास' इसका 'क्षर कर्म' है। वैदिक ऋषि इसी 'इतिहास रूपी क्षर कर्म' को खोजते हुए काल के उस 'मान' और 'मेय' तक पहुँच चुके थे जहाँ 'नीहारिकाएँ'[1] महापिण्डों के रूप में परिणत होती है। भविष्यत् के रूप में दिखाई देने वाला यह संसार 'ऊँ' कार स्वरूप अक्षर तत्त्व का ही उपव्याख्यान है –

"आमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंङ्कार एव।"[2]

दृश्यमान व अदृश्यमान विश्व की संरचना, भुवनकोशों का विस्तार, ब्रह्माण्ड की अनंत गैलेक्सियाँ, उनमें अन्य पिण्डों की उत्पत्ति, स्थिति व संहार, समस्त चराचर जगत् की उत्पत्ति स्थिति–संहार, समस्त कार्य–कारण पदार्थ इस "काल द्रव्य" के भीतर ही समाहित है [3]। **"कलयति संख्याति सर्वान् पदार्थान् सकालः"** (स०प्र० प्रथमुल्लास)[4]

काल शब्द की व्युत्पत्ति व अर्थ =
√कल–गतौ संख्यायने च + घञ् प्रत्ययः (वृषादीनां च – अष्टा०, 6/1/203)
(1) **कालः कालयतेर्गतिकर्मणः। √कल गतौ [5]।**
(2) **कालः कालयतेः इति कर्मणः 'काल गत्यर्थक 'काल' धातु से बनता है। क्योंकि यह काल सब प्राणियों को कालयति – नष्ट करता है [6]।'**
कालो ज्ञायतेऽनेनं ज्ञा–करणे ल्युट् 6 त०। सौरागमादि ज्योतिः शास्त्रे "विदिस्ते मया भावस्तोषित तपसा द्रयहम्। दद्यां कालाश्रयं ज्ञानं अहाणां चरितं तथा"[7]
'काल' शब्द संख्यानार्थक तथा शब्दार्थक कल् धातु घञ् प्रत्यय से निष्पन्न होता है, जिसका निर्वचन है–

'काल्यते स कालः' या 'कालयति सर्वं यः स कालः।'[8] इसके अनुसार जो तत्त्व समस्त भौतिक पदार्थों का अयं घटः, अयं मनुष्यः, अयं पशुः इत्यादि रूप से संख्यात्मक तथा शब्दात्मक पृथकता को व्यक्त करता है और समस्त पदार्थों को स्व–स्व पार्थक्य के लिए प्रेरित करता है वही तत्त्वविशेष 'काल' है [9]। कालतत्त्व समस्त पदार्थों को अलग–अलग कैसे करता है – काल के नामान्तर 'समय' का स्वरूप जानने पर इसका स्पष्टीकरण हो जाता है।
'समय' शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक गत्यर्थक इण् धातु से अच् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न है जिसका अर्थ है 'समेति' किं वा 'सम्यग् एति'। इसके अनुसार व्यवस्थित क्रमबद्ध गतिभाव ही 'सम्यग् एति–गच्छति' रूप से समय है। गतिभावात्मक समय के तीन क्रमविवर्त हैं – भूत–भवत्–भविष्यत्। विश्व का प्रत्येक पदार्थ नित्य, निरन्तर गतिमान् होने से समय के इन क्रमविवर्तों से पृथक् होकर नहीं रह सकता। इस प्रकार समय के ये क्रमविवर्त प्रत्येक पदार्थ के अस्तित्व के परिचायक प्रतीत होते हैं। सत्ताभावात्मक भू धातु से निष्पन्न होने से भी भूत–भवत्–भविष्यत् स्व–सम्बद्ध प्रत्येक पदार्थ के अस्तित्व के परिचायक हैं [10]।

"काल के वैज्ञानिक सिद्धान्त व भारतीय ग्रंथों में काल की अवधारणा"
1) काल के वैज्ञानिक सिद्धान्त
2) वैदिक–वैज्ञानिक सिद्धान्त
पदार्थगत–संख्यात्मक–शब्दात्मक–व्यवच्छेद का कर्ता 'कालतत्त्व' गतितत्त्व से अभिन्न सिद्ध होने के बाद भी गतितत्त्व का काल के रूप में तब तक अस्तित्त्व नहीं है जब तक वह "ज्ञानशक्ति" से युक्त न हो।

वेदों के अनुसार – ज्ञानशक्ति (ब्वदेबपवनेदमे) से गतिभाव का समन्वय ही "काल की उत्पत्ति का प्रयोजक है"। पण्डित मोतीलाल शास्त्राी ने वैदिक प्रमाणों के आधार पर ही यह उद्घाटित किया है कि – सूर्य, जो गति का साक्षात् प्रतीक है; के साथ (सूर्य की गति के साथ) ज्ञानशक्ति के समन्वय से ही काल की उत्पत्ति होती है। ज्ञान तत्त्व के बिना "कालतत्त्व" का भान भी संभव नहीं है। कालोत्पत्ति की वैदिक अवधारणा में ज्ञानशक्ति ;ब्वदेबपवनेदमेद्ध की यह अनन्यता आधुनिक विज्ञान से समर्थित है – "पदार्थ मात्र के" गतिमत्त्व में ब्राह्मण ग्रंथ प्रमाण है। ष्चिंबम ंदक जपउम ंतम कमपिदमक ` बववतकपदंजमे व िवनत बवदेबपवनेदमेण जीमल ंतम दवज जीम मदजपजपमे व िवइरमबजपअमए चीलेपबंस ॅवतसकण्ष

शतपथ ब्राह्मण घोषित करता है– **"स वा एष आत्मा मनोमय प्राणमयो वाङ्मयः"।**[11] अर्थात् यह समस्त विश्व मन, प्राण, एवं वाक् की समष्टि है। इसका तात्पर्य यह है कि – सूक्ष्मतम से स्थूलतम पर्यन्त प्रत्येक पदार्थ मन, प्राण, वाग् से युक्त है। प्राण का अर्थ है – क्रिया। इससे स्पष्ट है कि वेदों में सूक्ष्म से स्थूल पर्यन्त पदार्थ को क्रिया या गतियुक्त कहा गया है। प्रत्येक द्रव्य में 'अविरल गति' योग्यता मानी गई है। वेदों के अनुसार कोई भी द्रव्य क्षणमात्र भी क्रिया अर्थात् गति से रहित नहीं है। **"पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।"**[12]

जिस प्रकार पदार्थमात्र में 'अविरल गतिमत्त्व' है उसी प्रकार 'ज्ञेयत्व' भी है। 'ज्ञेयत्व' पदार्थमात्र का केवलान्वयी गुण है [13]। इस प्रकार पदार्थमात्रा निरन्तर गतिमान होने के साथ ही साथ निरंतर ज्ञेय भी है। गतितत्त्व के साथ ज्ञान–शक्ति का समन्वय ही कालोत्पत्ति का प्रयोजक होने से, नित्य निरंतर गतिमान् एवं ज्ञेय माना गया 'पदार्थ' निश्चय ही काल से बद्ध है, काल के बन्धन से वह कदापि मुक्त नहीं हो सकता [14]।

"विश्व का मूल कारण ब्रह्म" भी गतिरहित तथा निष्क्रिय नहीं हो सकता। विश्व के 'प्रत्येक पदार्थ को' 'क्रियायुक्त' घोषित करने वाली– **'स वा एष आत्मा मनोमय प्राणमयो वाङमयः'** – इस श्रुति के पश्चात् **'अयमात्मा ब्रह्म'** यह श्रुत्योद्घोष भी प्राप्त होता है जिससे पर्यवसित है कि विश्व का मूल कारण भी 'कार्यजगत्' के सदृश अवश्य ही कथञ्चित क्रिया अथवा 'गतियुक्त' है अर्थात् सर्वथा गतिहीन नहीं है एवं विश्व का मूल कारण सर्वथा 'अविज्ञेय' भी नहीं हो सकता क्योंकि ऋषिदृष्टि अपनी आर्षता से परोक्ष, अचिन्त तत्वों का साक्षात्कार करने में समर्थ होती है [15]।

इस प्रकार "विश्व के मूलकारण में भी गतितत्त्व के साथ ज्ञानशक्ति की युति होने से वह भी काल के बन्धन से सर्वथा मुक्त प्रमाणित नहीं होता, जिसके परिणामस्वरूप "सर्वत्र कालतत्त्व का वर्चस्व सिद्ध है।"

अथर्ववेद में प्राप्त कालसूक्त के **"कालो ह सर्वस्येश्वरो", "स ईयते परमो नु देवः", "तस्माद् वै नान्यत् परमोऽस्ति तेजः"**[16] इत्यादि पद्यों में काल को सर्वेश्वर, परमदेव, परमतेज इत्यादि कहकर काल की सर्वव्यापकता को घोषित किया है।

1.1 आधुनिक–वैज्ञानिक सिद्धान्त

पदार्थमात्रा के गतिमत्त्व की मान्यता का उदभव व विकास 'आधुनिक विज्ञान' में किस रूप में हुआ, इसका संक्षिप्त दिग्दर्शन हम इस प्रकार पाते हैं–

1. प्रारंभिक मान्यता – पाश्चात्य भौतिक विज्ञान में अरस्तु के समय (384–322 ई०पू०) से प्रायः 2000 वर्षो तक दृढ़ विश्वास के साथ यह माना जाता रहा कि – विश्व के समस्त पदार्थ स्वभावतः गति रहित हैं। बाहय क्रिया या बल से ही उनमें गति उत्पन्न की जाती है यथा रथ के चक्र में अश्वबल को आरोपित करना। बल हटा लेने पर पदार्थ पुनः 'स्थिर अवस्था' में आ जाता है [17]। आधुनिक युग के समस्त यान्त्रिक उपकरणों तथा वाहनों की स्थिति भी यही है कि बाह्यबल के अभाव में ये स्थिर रहते हैं।

2. अरस्तू के गुरु प्लेटो अध्यात्मवादी थे, लेकिन अरस्तू ने अध्यात्मवादी विचारधारा का त्याग करके भौतिकवादी विचारधारा का अनुसरण किया जिससे दर्शन के इतिहास में "यथार्थवादी–भौतिकवादी विचारधारा" का जन्म हुआ, और यह विचारधारा अनेक शताब्दियों तक पाश्चात्य जगत् के साथ ही साथ समस्त संसार को भी प्रभावित करती रही। इसी विचारधारा ने "प्रायोगिक भौतिक विज्ञान" को जन्म दिया जिससे मानवजगत् विशेषतः पाश्चात्य जगत् प्रत्यक्षदृष्ट वस्तुओं के विषय में ही जानने के लिए प्रेरित थे।

1.2 गतिविषयक आधुनिक विज्ञान की मान्यता

अरस्तु से बीस शताब्दी के पश्चात् महान वैज्ञानिक गैलीलियों (1580–1642) ने दूरदर्शी यंत्रों का आविष्कार करके 'अंतरिक्ष के पिण्डों की गतिशीलता' का प्रत्यक्ष दर्शन किया। तत्पश्चात् गैलीलियों के अन्वेषणों व सिद्धान्तों का अनुसरण करके भौतिक वैज्ञानिक न्यूटन (1642–1727 ई०) ने कई अनुसंधान किए जिसके परिणामस्वरूप अनेक शताब्दियों से चली आ रही गतिविषयक भ्रांतियों का निवारण हो सका। न्यूटन ने प्रमाणिक रूप से उद्घाटित किया कि – **विश्व निरन्तर गतिशील कणों से निर्मित है तथा विश्व का सूक्ष्म से स्थूलतम पर्यन्त प्रत्येक द्रव्य तब तक एकरूप अविरल गति से निरन्तर गतिशील रहता है जब तक उसे किसी बाह्य बल से अवरुद्ध न किया जाए।**

"Newton following Galileo, put the quietus to one of the greatest delusions of man concerning the lows of motion of bodies" [18].

पाश्चात्य भौतिक विज्ञान में 'आइन्स्टीन' के पहले 'काल' को निरपेक्ष अर्थात् परिवर्तनशील नहीं माना गया था। आइन्स्टीन के कई प्रयोगों और विश्लेषण के आधार पर यह स्थापित किया गया कि 'काल' निरपेक्ष नहीं अपितु सापेक्ष अर्थात् परिवर्तनशील है। उनके अनुसार गति (या वेग) के भेद से काल के परिमाण में निश्चय ही भेद होता है।

इस प्रकार वैदिक विज्ञान पद्धति तथा आधुनिक (भौतिक) विज्ञान पद्धति से सिद्ध है कि – काल द्रव्य है। क्योंकि द्रव्य 'क्रिया अर्थात् गति' से रहित नहीं है। काल की द्रव्य सत्ता को वेद विज्ञान पहले ही सिद्ध कर चुका था। जहाँ काल, भूत–भवत्–भविष्यत् को उत्पन्न करता है तथा काल निरंतर गतिशील है जिससे काल सापेक्ष है। काल की यह सापेक्षता (परिवर्तनशीलता) समस्त भारतीय ग्रंथों में प्रतिपादित की गई है।

2. वैदिक वैज्ञानिक सिद्धान्त

2.1 भारतीय ग्रंथों में काल की अवधारणा

भारतीय वैदिक वाङमय के वैदिक साहित्य व लौकिक साहित्य में काल से संबंधित अवधारणाएँ सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं जो इस प्रकार हैं –

2.1.1 प्राचीन ग्रंथों में वर्णित काल

(क) वेद – ऋग्वेद में 'काल' शब्द केवल एक बार आया है। यथा– जिस प्रकार द्यूत खेलने वाला 'कृत' (ऊँची फेंक) को "उचित काल" में एकत्र करता है [19]।

अथर्ववेद में दो सूक्त इस प्रकार हैं जिनसे "काल की उच्चतम धारणा" की अभिव्यक्ति होती है। यथा – काल सात रश्मियों वाले, सहस्र आँखों वाले, अजर एवं पर्याप्त बीज (शक्ति) वाले अश्व को हांकता है अर्थात् लेकर चलता है, विज्ञ कवि लोग उस पर चढ़ते हैं, सभी भुवन उसके चक्र (पहिए) हैं, उसी ने भुवनों को एक किया है और उसी ने स्वयं सभी भुवन की परिक्रमा की; पिता होकर भी वह सभी (भुवनों) का पुत्र बना, उससे बढ़कर सचमुच कोई अन्य तेज नहीं है; काल में मन है, काल में प्राण (उच्छ्वास) है; काल में नाम समाहित है; ये सभी जीव उसके आगमन से प्रसन्न होते हैं; काल ने प्रजा (जीवों) की उत्पत्ति की, आरंभ में काल ने प्रजापति को उत्पन्न किया; स्वयम्भू कश्यप काल से उभरे और (इसी प्रकार) तप भी काल से निकले; काल पुत्र ने अतीत (भूत) एवं भविष्य (भव्य) की

उत्पत्ति की; काल से ऋचाएँ एवं यजु (यज्ञ संबंधी नियम) उत्पन्न हुए; यह लोक एवं परमलोक, पुण्यलोक एवं पुण्य (पवित्र) विधृतियाँ, इन सभी लोकों को ब्रह्म द्वारा पूर्णतया जीतकर काल परम देव की भांति चलता रहता है (निवास करता है) [20]।
उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अति आरंभिक वैदिक काल में "काल" शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता था – (1) सामान्य काल (2) परमतत्त्व से संबंधित काल जिसे 'महाकाल' कहते हैं।

(ख) ब्राह्मण – शतपथ ब्राह्मण में काल शब्द का प्रयोग 'समय' व 'उचित समय' के अर्थ में हुआ है [21]।

(ग) उपनिषद – भारतीय उपनिषद् ग्रंथों में काल शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यथा–
(1) छान्दोग्योपनिषद् में 'अन्त होने के अर्थ में' [22]।
(2) श्वेताश्वेतरोपनिषद् में 'सृष्टि के कारण या मूल के अर्थ में [23]।
(3) मैत्री उपनिषद् में 'आदित्य स्वरूप होने पर मूर्तिमान व संवत्सर रूप होने पर अमूर्तिमान के अर्थ में [24]।
(4) माण्डूक्योपनिषद् में त्रिविध काल से ऊपर 'ओंकार' को बताया गया है [25]।
(5) महानारायण उपनिषद् में **"अहमेव कालो नाहं कालस्य"।[26]**

(घ) स्मृतिः – मनुस्मृति में काल का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। मनुस्मृति में परमात्मा को काल और उसके विभागों का सृष्टिकर्ता कहा गया है [27]। परामात्मा विश्व–सृष्टि के उपरान्त अपने में विलीन होता प्रदर्शित किया गया है, और बार बार एक कालावधि को दूसरी कालावधि से चूसता या पीड़ित करता हुआ प्रकट किया गया है –

"आत्मन्यन्तर्दधे भूयः कालं कालेनिपीडयन्।"

2.1.2 लौकिक ग्रंथों में वर्णित काल

(क) रामायण – वाल्मीकि कृत रामायण में ब्रह्मा से प्रेरित काल 'पुरुषाकृति' को धारण करके श्रीराम से ब्रह्मलोक चलने की प्रार्थना करते हुए अपने 'जन्यजनक भाव संबंध' को प्रकट करता है–

"शृणु राजन्महासत्व यदर्थमहमागतः। पितामहेन देवेन प्रेषितोऽस्मि महाबल!।
तवाहं पूर्वके भावेपुत्रः परपुरंजय। मायासंभावितो वीरकालः सर्व समाहरः।।
पितामहश्च भगवानाह लोकपतिः प्रभुः। समयस्ते कृतः सौम्य लोकान्सं परिरक्षितुम्।।
संक्षिप्य हि पुरा लोकान्मायया स्वयमेवहि। महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजानः।।[28]

(ख) महाभारत – महाभारत में कालतत्त्व का उल्लेख 'प्रासंगिक' या 'व्यावहारिक' ही प्राप्त होता है। महाभारत की तात्विक दृष्टि सांख्य प्रधान है अतः सत्कार्यवादी सांख्य का प्रभाव महाभारत में दृष्टिगोचर होता है जहाँ 'काल' को कार्य कारणभाव में 'हेतू' रूप कहा गया है–

"नाभ्येति कारणं कार्यं न कार्यं कारणं बिना।
कार्याणां तूपकरणे कालो भवति हेतूमान्।।"[29]

तथा –

"कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
संहरन्तं प्रजाः कालं कालः शमयते पुनः।।
कालो हि कुरुते भावान् सर्वलोके शुभाशुभान्।
कालः संक्षिपते सर्वाः प्रजाः विसृजते पुनः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरति क्रमः।।"[30]

लय की अवस्था में कार्य अपने अपने कारण में विलीन होता है। इस मत की पुष्टि 'व्यास–शुक–संवाद' में प्राप्त होती है कि – काल का लय बल में होता है तथा पुनः बल का लय 'काल' में होता है।

"कालो गिरति विज्ञानं कालं बलमिति श्रुतिः।
बलं कालो ग्रसति तु तं विद्या कुरुते वशे।"[31]

गीता में काल को भगवान् से पृथक् नहीं माना गया। स्वयं को काल रूप में वर्णित करते हुए कृष्ण कहते हैं –
काल का संख्यात्मक स्वरूप मैं ही हूँ – **'कालः कलयतामहम्'**।
काल का नित्य स्वरूप मैं ही हूँ – **'अहमेवाक्षयः कालो'।**
संहार मूर्ति रूप काल भी मैं ही हूँ – **'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः।'[32]**

(ग) व्याकरण – पाणिनि ने काल का सामान्य अर्थ ही प्रस्तुत किया है। पतञ्जलि ने (पाणिनि 2/2/5 के दूसरे वार्तिक में) काल संबंधी एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त की चर्चा की है। यथा – लोग काल उसे कहते हैं जिसके द्वारा कठोर वस्तुओं की वृद्धि एवं क्षय लक्षित होता है, और वही (काल) रात्रि एवं दिन कहा जाता है। जबकि वह क्रिया से संयुक्त हो जाता है। वह क्रिया क्या है? उत्तर है आदित्य की गति। जब वह गति बार–बार होती है तो मास एवं संवत्सर (वर्ष) होता है। इसे और स्पष्ट करें तो हम कह सकते हैं कि – वैयाकरण काल के एकत्व को स्वीकार करते हैं। वस्तुओं की उत्पत्ति, स्थिति, विनाश में उपाधि भेद भिन्न होने पर भी एकत्वभूत काल ही हेतु है। जबकि काल के अनेकत्व में सूर्य की क्रिया के संबंध से ही दिन, रात्रि मास, संवत्सर आदि व्यवहार को महाभाष्यकार पतंजलि स्वीकार करते हैं [33]।

(घ) दार्शनिक ग्रंथों में वर्णित काल

भारतीय दर्शन की समग्रता का निर्माण तीन प्रमुख धाराओं से होता है –

1. **वैदिक –** दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन वेद को आधार मानकर करना जिनमें प्रमुख दर्शन हैं – न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त।
2. **आगमिक –** आगमों तथा मंत्रों को आधार मानकर दर्शन सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले दर्शन जिनमें प्रमुख हैं – वैष्णव, शैव, शाक्त।
3. **श्रमण –** मोक्ष या अध्यात्मिक उन्नति के लिए ईश्वरीय अनुग्रह को आवश्यक न मानकर मानवीय (प्रयास) श्रम को महत्व देते हैं। इनमें प्रमुख दर्शन हैं – चार्वाक बौद्ध व जैन। इन सभी दर्शनों में काल तत्त्व की विस्तृत अवधारणाओं पर एक संक्षिप्त दृष्टिपात इस प्रकार है –

2.1.3 आस्तिक दर्शनों में माननीय सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक मीमांसा व वेदांत में काल

(1) सांख्य – सांख्य दर्शन के विचार यथा – त्रिगुण, अहंकार, तन्मात्रा, पुरुष, प्रकृति आदि की चर्चा श्वेताश्वेतरोपनिषद्, कठ, महाभारत, भगवद्गीता आदि में प्राप्त होने से यह प्रमाणिक दर्शन है। इसके आद्य आचार्य महर्षि कपिल मुनि हैं और इनके ग्रंथ 'सांख्य सूत्र, तत्त्वसमास है' जो प्राचीनता के कारण वर्तमान समय में अप्राप्य हैं। कपिल शिष्य आसुरि से पंचशिख को प्राप्त ज्ञान सांख्य ज्ञान ही है जिससे पंचशिख ने षष्टितंत्र की रचना की और इस षष्टितंत्र को आधार मानकर रचित सांख्य दर्शन का वर्तमान समय में उपलब्ध प्रमाणिक ग्रंथ ईश्वरकृष्ण विरचित "सांख्यकारिका" महत्वपूर्ण है। कपिल कृत सांख्य सूत्र में कालतत्त्व का उल्लेख हुआ है। **"दिक्कालावाकाशादिभ्यः"[34]** परन्तु विद्वान इसकी प्राचीन व कपिल कृत होने पर संदेह करते हैं। इस सूत्र के भाष्यकार आचार्य विज्ञानभिक्षु कालतत्त्व के नित्य और अनित्य दो भेद स्वीकार करते हैं। लेकिन वृत्तिकार अनिरुद्ध भेद को स्वीकार न करके खण्डकाल की सत्ता को स्वीकार करते हुए आकाश तत्त्व में ही काल का अन्तर्भाव करते हैं– **तत्तदुपाधि भेदादाकाशमेव दिक्काल शब्दवाच्यम्।**

तस्मादाकाशेऽनतर्भूती।"[35] भगवत्पाद आचार्य श्रीशंकर के "दक्षिणामूखत्तस्तोत्राय" पर आचार्य श्री सुरेश्वर का 'मानसोल्लास" वार्तिक में निरीश्वर सांख्य का कथन हुआ है जहाँ भूत–भविष्य–वर्तमान रूप में काल की व्यावहारिक सत्ता स्वीकार की गई है – **"कालश्च भूतं भविष्यदिति व्यवह्रियमाण पदार्थ व्यतिरेकेण न स्वतन्त्रोऽस्ति।"**[36] किन्तु ईश्वरकृष्ण विरचित सांख्यकारिका में कालतत्त्व की सत्ता को स्वीकार नहीं किया है। ब्रह्मसूत्र के शांकर–भाष्य पर रत्न प्रभाकर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है – सांख्य काल की सत्ता स्वीकार नहीं करता **"सांख्यैः कालस्यानंगीकारादि.... ।"**[37] इस प्रकार काल की चर्चा उपर्युक्त भाष्यकारों ने की है।

(2) योग – महर्षि पतंजलि विरचित "योगसूत्र" पातञ्जल दर्शन का आद्य ग्रंथ है जहाँ योग के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन किया गया है। इस योगसूत्र पर सर्वप्रथम अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण 'व्यास भाष्य' की रचना हुई है तथा इस व्यास भाष्य पर वाचस्पति मिश्र ने तत्त्ववैशारदी और विज्ञानभिक्षु ने 'योग वार्तिक' की रचना की है। इस योगदर्शन में कालतत्त्व की सत्ता को स्वीकार करते हुए "क्षणात्मक" विभागी काल को ही काल शब्द से संबोधित किया गया है। **"क्षणतत् क्रमयोः संयमाद् विवेकजं ज्ञानम्"**[38] के व्यास भाष्य पर विज्ञान भिक्षु ने व्याख्या करते हुए लिखा है कि – **"इदानीं क्षणातिरिक्तः कालोनास्ति मुहुर्त्तादिरूपो महाकाल पर्यन्त इति"**। वे आगे चलकर कहते हैं – **मुहुर्त्ताहोरात्रादयो बुद्धिकल्पितसमाहार एव"**।[39] पातंजल दर्शन अविभागी क्षण को ही काल–तत्त्व के रूप में स्वीकार करता है।

(3) न्याय – जिस दर्शन में भिन्न–भिन्न प्रमाणों द्वारा वस्तु तत्त्व की परीक्षा की जाती है वह न्याय दर्शन कहलाता है [40]। गौतम अक्षपाद मुनि विरचित "न्यायसूत्र" इस दर्शन का प्रथम ग्रंथ है। गंगेश उपाध्याय ने गौतम के **'प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि'** सूत्र पर 'तत्वचिन्तामणि' नामक निबन्ध ग्रन्थ लिखकर प्राचीन न्याय से न्याय की धारा प्रवाहित की। वात्स्यायन द्वारा रचित 'न्यायभाष्य' व जयन्त भट्ट रचित 'न्यायमंजरी' में न्याय के सिद्धान्तों का प्रौढ़ प्रतिपादन हुआ है। जयन्त भट्ट काल को मात्र अनुगम्य ही नहीं अपितु प्रत्यक्ष गम्य भी मानते हैं –

"दृष्टः परापरत्वस्य दिक्कृतस्य विपर्ययः।
युवस्थविरयोः सोऽपि विना कालं न सिध्यति।।
सिद्धः कालश्चाक्षुषो लैंगिको वा।
तन्नानात्वं सिद्धमौपाधिकं च।।"[41]

(4) वैशेषिक – गोचर जगत् को सत्य मानने वाला वस्तुवादी वैशेषिक दर्शन, मनुष्य की सहज बुद्धि के अधिक निकट हैं वैशेषिक दर्शन के ज्ञान का आधार "वैशेषिक सूत्र" की रचनाकार महर्षि कणाद है जिन्हें कणभुक्, कणभक्ष, उलूक तथा औलूक आदि नामों से जाना जाता है। वैशेषिक सूत्र पर रावण भाष्य, आत्रेय भाष्य, कटन्दी आदि व्याख्या ग्रंथों की रचना हुई। प्रशस्तपाद रचित 'पदार्थ धर्म संग्रह' वैशेषिक दर्शन का मौलिक ग्रंथ जिस पर व्योम शिव की 'व्योमवती' श्रीधर की 'न्यायकन्दली' प्रमुख है। सर्वप्रथम महर्षि कणाद के सिद्धान्त में काल नव द्रव्यों में एक महत्वपूर्ण द्रव्य है। कणाद सूत्र पर प्रशस्त पाद भाष्य इस प्रकार है – **"काललिंगाविशेषादंजसैकत्वेऽपि"** इस पर न्यायकन्दलीकार श्रीधर भट्ट काल के एकत्व को प्रतिपादित करते हुए, उसके भेद प्रतिपादकत्व को इस प्रकार स्वीकार करते हैं – **काललिंगानां परापरादि प्रत्ययानामविशेषाद् भेदाप्रतिपादकत्वादंजसा मुख्यया वृत्त्या कालस्यैकत्वेऽपि सिद्धेनानात्वोपचारान्नानात्वव्यपदेशः।**[42]
वैशेषिकों के सिद्धान्त के अनुसार काल प्रत्यक्ष प्रमा का विषय नहीं है।
आचार्य प्रशस्तपाद ने काल द्रव्य के पांच गुण कहे हैं –

"तस्यगुणाः संख्या परिमाण पृथकत्व संयोग विभागाः।"[43]

काल को "कणादसिद्धान्त चन्द्रिका" में सर्व उत्पत्ति का निमित्त कारण एवं विश्व का आधारतत्व भी कहा गया है – **"सर्वोत्पत्ति निमित्तं जगदाधारश्च कालः।"**[44]

(5) मीमांसा
अपौरुषेय वेद के विभिन्न यंत्रों की विधि तथा अनुष्ठान से सम्बद्ध भाग (कर्मकाण्ड) तथा जीव, आत्मा, संसार, ईश्वर आदि का तात्त्विक विवेचन (ज्ञानकाण्ड) में आपाततः विरोध जान पड़ता है। इन्हीं विरोधों के परिहार का लक्ष्य लेकर मीमांसा दर्शन की प्रवृत्ति हुई। मीमांसा दर्शन का मूल ग्रंथ जैमिनीयसूत्रा है। **शबर स्वामी** ने जैमिनि सूत्रों पर अत्यंत प्रमाणिक भाष्य लिखा जो शाबर भाष्य नाम से प्रसिद्ध है। शबर भाष्य पर लिखने वाले टीकाकारों में कुमारिल भट्ट, प्रभाकर भट्ट प्रसिद्ध हैं, इन्हीं दोनों के नाम से मीमांसा के दो संप्रदाय – भाट्टमत तथा गुरुमत हैं। आचार्य भट्टपाद के अनुसार काल विभु एवं नित्य द्रव्य है। इस मत में 11 द्रव्य स्वीकृत है जिसमें काल एक स्वतंत्र द्रव्य है – **"द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवायुवाकाशकालदिगात्मनोन्धकारशब्दरूपाण्येकादश"**।[45]
द्रव्य मीमांसकों के अनुसार "परिणाम गुणाधार" है – **"परिणाम गुणाधारं द्रव्यं द्रव्यविदोविदुः"।**[46] इनके मत से काल द्रव्य की सत्ता छहो इन्द्रियों से ग्राह्य है – **"स च कालः षडिन्द्रियग्राह्यः"**[47]। अद्वैतसिद्धिकार आचार्य प्रवर श्रीमधुसूदन सरस्वतीपाद ने भी इस ग्रंथ के प्रथम परिच्छेद में मीमांसक सम्मत कहते हुए काल के इन्द्रिय प्रत्यक्षविषयत्व को इस प्रकार प्रस्तुत किया है – **कालस्य च रूपादिहीनस्य मीमांसकादिभिः सर्वेन्द्रियग्राह्यत्वाभ्युपगमाद्"**[48]। मीमांसकों के मतानुसार घ्राण आदि पांच बाह्य इन्द्रियाँ एवं मनआभ्यन्तर इन्द्रिय है।

(6) वेदान्त
वेदान्त दर्शन मुख्यतः उपनिषदों के सिद्धान्तों पर आधारित है। औपनिषदिक विचारधारा के सामंजस्य को बताने के लिए बादरायण व्यास ने 'ब्रह्मसूत्र' की रचना की थी जिसे वेदान्त सूत्र, शारीरिक सूत्र आदि की संज्ञा भी दी जाती है।
अद्वैत वेदान्त के अन्तर्गत काल की स्वतंत्र सत्ता नहीं है। आचार्य श्री शंकर ने सत्ता का निर्वचन त्रिविध किया है – (1) पारमार्थिकी सत्ता (2) व्यावहारिकी सत्ता (3) प्रातिभासिकी सत्ता। परम अर्थ में ग्रहण सत्ता वह है जो तीनों कालों में व्यभिचरित नहीं होती जैसे – ब्रह्म। ब्रह्म साक्षात्कार के पूर्व संसार दशा में आकाश, पृथ्वी आदि की सत्ता व्यावहारिक है। भ्रमवश शुक्ति में रजत, रज्जु में सर्प दर्शन प्रतिभासिक सत्ता के उदाहरण हैं। अतः काल की सत्ता परम अर्थ में न होकर, व्यावहारिक है [49]।
खण्डनखण्डखाद्य के चतुर्थ परिच्छेद के "कारणत्व खण्डन" प्रसंग में वर्तमान, भूत आदि काल का प्रत्याख्यान करते हुए महापंडित श्री हर्ष ने बड़ी वर्जना के साथ सम्पूर्ण काल–तत्त्व का ही प्रत्याख्यान किया है [50]।

2.1.4 नास्तिक दर्शनों[51] में काल की अवधारणा
वेदों को प्रमाण न मानने वाले दर्शनों की संख्या तीन है जिनमें – चार्वाक, बौद्ध, जैन धर्म को समाहित किया जाता है।

I. **चार्वाक दर्शन –** चार्वाक मत प्रत्यक्षवादी है जिसके "फलस्वरूप यह आकाश, काल, की सत्ता को स्वीकार न करके केवल चार पदार्थों की सत्ता को ही स्वीकार करता है – **"अथ चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनिलानलाः।"**[52]

II. **बौद्ध दर्शन –** बौद्ध दर्शन काल तत्त्व की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। यत्र तत्र इनका खण्डन ही दिखलाई देता है। आचार्य शान्तरक्षित का कथन है –

"विशिष्ट समयोद्भूतमनस्कार निबन्धनम्
परापरादि विज्ञानं न कालान्न दिश श्चतत्।

निरंशैकस्वभावत्वात् पौर्वापर्याद्यसंभवः
तयोः संबन्धि भेदाच्चेदेवंतौ निष्पफलौ ननु।।"[53]

क्रम से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के लिए "पूर्व" और "पर" का व्यवहार सर्वत्र प्रचलित है, जिससे मन के भीतर संस्कार बनता है, उसी से "पूर्व" और "पर" की प्रीतति होती है। यह संकेत ज्ञान जनित संस्कार है, जो आभोग शब्द के साथ व्यवहृत होता है। अतः बिना दिक् और काल के ही यह व्यवहार निष्पन्न हो जाता है। ये दोनों ही निरवयव होने के कारण इनका स्वतः "पूर्व" "पर" भाव नहीं बन पाता। यदि यह मान लिया जाय कि दिक् काल का संबंध वस्तुओं से होने पर पूर्वाजर का व्यवहार होता है, तो इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं है।
श्री वरवर मुनि ने तत्त्वत्रय भाष्य में स्पष्ट उद्धृत किया है कि –

"कालो नास्तीति बौद्धादिभिरभिधानात्।"[54]

तथा शिबार्कमणिदीपिका का भी यह मत है कि –

"बौद्धमते वस्तुतः कालोनास्ति।"[55]

3. जैन दर्शन – जैन दर्शनों के अनुसार किसी भी वस्तु के परिवर्तन में सहायता पहुँचाने वाला द्रव्य काल है। स्वतः परिवर्तनशील अन्य द्रव्यों के परिवर्तन में काल सहकारी होता है। काल की अपेक्षा से ही किसी भी पदार्थ के परिणमन को अतीत, वर्तमान या भविष्य कहा जाता है। काल दो प्रकार का होता है –
1. पारमार्थिक काल – यह नित्य तथा निरवयव है क्योंकि हर क्षण हर पल में काल है।

2. व्यावहारिक काल – क्षण, पहर, घड़ी, दण्ड आदि अवयवों से संपन्न काल को व्यावहारिक काल कहा जाता है।
आचार्य कुंदकुंद ने स्पष्ट कहा है – पुद्गलादि द्रव्यों का परिणमन ही लिंग है जिसका वही काल नाम का द्रव्य है। इस द्रव्य से संयुक्त होने पर ही पंचस्तिकाय द्रव्य के स्वरूप को प्राप्त होते हैं। यहाँ काल के पर्याय को जानने के लिए पुद्गल का परिणमन बहिरंग निमित्त है। पुद्गल परमाणु जब एक प्रदेश से अन्य प्रदेश में गमन करता है – तब उसका नाम सूक्ष्म काल का पर्याय "अविभागी" होता है। अतीत, अनागत आदि भाव गुणपर्याय कहे गए हैं –

"ते चे व अत्थिकाया ते कलिय भावपरिणदाणिच्चा।
गच्छति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता।।"[56]

इन दार्शनिक ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों में भी 'काल तत्त्व' की चर्चा प्राप्त होती है जिनमें आयुर्वेद[57], वात्स्यायन कृत "कामशास्त्र"[58] में। इस प्रकार काल की विस्तृत विवेचना भारतीय ग्रंथों में दृष्टिगोचर होती है। जहाँ काल की सत्ता को मान्य या अमान्य रूप में पाया गया।
उपर्युक्त संपूर्ण विवेचना से स्पष्ट है काल शब्द की अवधारणा ग्रंथों में सामान्य काल के अर्थ में, आदित्य (सूर्य) की गति से संबंधित काल के अर्थ में तथा ब्रह्म से संबंधित अर्थ में काल का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार भारतीय ज्योतिष के अंतर्गत काल का वह रूप प्राप्त होता है जो– 'लोक व्यवहार' में प्रयुक्त होता है। भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त स्कंध में काल का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है, जहाँ काल की विविध इकाइयाँ, काल के (नवविध) भेद काल का कलनात्मक रूप प्राप्त होता है, जो सूर्य की गति से उत्पन्न हुआ काल है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर वेद प्रतिपादित यज्ञादिकर्मानुष्ठान सहित लोकव्यवहार में प्रयुक्त काल की उपयोगिता एवं उसकी महत्ता का प्रतिपादन ज्योतिष ग्रन्थों में किया जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. निहारिका (वैदिक नभस्वान् समुद्र... वा०सं० 13/31) जिस जल में हिरण्य गर्भ प्रकट होता है उसे पुराणों में 'युगान्तेय निहारिका' कहा गया है जिसे खगोल विज्ञान 'नेबुला' कहता है। इसी समुद्र से सूर्य के जन्म होने का उल्लेख है – 'अत्रा समुद्रगूळहमा सूर्यमजभर्तन"। ऋ०, 10/72/6
2. माण्डूक्योपनिषद् – मंत्र 1
3. "तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाश कालदिगात्म मनांसि नैव।" तर्क० 2
4. (क) दयानन्द निरुक्ति व्युत्पत्तिकोषः, डॉ० रूप किशोर शास्त्री, पृ० 69
   (ख) वही।
5. वैदिक निर्वचन कोष, डॉ० ज्ञान प्रकाश शास्त्री, पृ० 57
6. निरुक्त द्वितीय अध्याय मंत्र 3/33/5
7. वाचस्पत्यम्, तृतीय भाग, पृ० 1982
8. अमरकोष, रामाश्रमी टीका, प्रथम काण्ड, कालवर्ग, 4, पृ० 43, श्लोक 1
9. वैदिक विज्ञान, डॉ० दयानन्द भार्गव, पृ० 22
10. वही।
11. शतपथ ब्राह्मण, 14/4/3/10
12. वैशेषिक दर्शन, 5
13. प्रशस्तपाद भाष्यम्, पृ० 20
14. वैदिक विज्ञान, सं० डॉ० दयानन्द भार्गव (राजस्थानी ग्रंथागार, 1996–97), पृ० 26
15. वैदिक विज्ञान, सं० डॉ० दयानन्द भार्गव (राजस्थानी ग्रंथागार, 1996–97), पृ० 26
16. अथर्व०, 19/6/53–54
17. वैदिक विज्ञान, सं० डॉ० दयानन्द भार्गव, पृ० 24
18. वैदिक विज्ञान, सं० डॉ० दयानन्द भार्गव, पृ० 29
19. कृतं न श्वघ्नी विचिनोति देवने। ऋ० (10/43/5) एवं अथर्ववेद में 'कृतंमिव श्वघनी विचिनोति काले', अथर्व० (20/17/5)
20. कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः। तमारहिन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा। स एव सं भुवनान्याभरत् स एव संभुवनानि पर्यैत्। पिता सन्नभवत्पुत्र एषां तस्माद्वै नान्यत्परमस्ति तेजः। काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम्। कालेन सर्वनन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः। कालः प्रजा असृजत् कालो अग्रे प्रजापतिम्। स्वयम्भूः काश्यपः कालात्तपः कालादजायत। अथर्व०, 19/53/ (1, 4, 7, 10)
    कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत्पुरा। कालादृचः समभवन्यजुः कालादजायत। इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः। सर्वाल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः।। अथर्व०, 19/54/5
21. श०ब्रा०, 1/7/3/3, 2/4/24
22. छान्दोग्योपनिषद्, 2/31/1
23. श्वेताश्वेतरोपनिषद्, (1/1–2) किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठा)
24. कालात्स्त्रवन्ति भूतानि कालाद् वृद्धिं प्रयांति च।
    काले चास्तं नियच्छन्ति कालो मूर्तिरमूर्तिमान्।। मैत्र्यु उपनिषद्, 6/14–16
25. भूतं भवद् भविष्यमिति सर्वमोंकार एव।
    यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव।।
26. महानारायण उपनिषद्, 11/14
27. मनुस्मृति, 1/21–24
28. रामायण उत्तरकाण्ड, 7/104
29. महाभारत शांति०, 211–11 (गीता प्रेस)
30. महाभारत स्त्री०, 2/24
31. महाभारत शांति०, 221/41
32. महाभारत, 10/30 एवं 33, 11/32
33. "येन मूर्त्तीनामुपचया–श्चापचयाश्च लक्ष्यन्ते तं कालमाहुः"।

महाभाष्य, 2/2/5
34. सांख्यसूत्र, 2–12
35. अनिरुद्धवृत्ति, 2–12
36. मानसोल्लास वृत्तान्त व्याख्या, 41
37. ब्रह्मसूत्र–शांकर भाष्य पर रत्नाप्रभा – 2 अ० 2 पा० (रचनानुपत्यध्किरण)
38. योगसूत्र, 3–52
39. आचार्य विज्ञानभिक्षुकृत – योगवार्तिक, 3–52
40. वास्यायन–न्याय भाष्य, 1/1/1, प्रमाणैरर्थ परिक्षणं न्यायः।
41. आचार्य जयन्त भट्ट कृत न्यायमंजरी, 2–5
42. न्यायकन्दली–द्रव्यग्रंथ।
43. प्रशस्तपाद भाष्य – द्रव्य ग्रंथ।
44. कणाद सिद्धान्त चन्द्रिका।
45. भाट्ट चिन्तामणि, 1–1–4
46. मानमेयोदय – प्रमेय परिच्छेद, 6
47. मानमेयोदय।
48. आचार्य मधुसूदन कृत – अद्वैतसिद्धि – प्रथम परिच्छेद।
49. नीरूपस्यापि कालस्येन्द्रियवेद्यत्वाभ्युपगमेन धरावाहिक बुद्धेरपि पूर्वं पूर्वं ज्ञान विषयतत्तत्क्षणविशेष विशिष्ट विषयकत्वेन न तत्राव्याप्तिः। श्री धर्म राजाध्वरीन्द्र कृत – वेदान्त परिभाषा – प्रथम परिच्छेद
50. श्रीहर्षकृत खण्डनखण्डखाद्य – चतुर्थ परिच्छेद – कारणलक्षण खण्डन प्रसंग।
51. नास्तिको वेदनिन्दकः
52. आचार्य हरिभद्रकृत – षडदर्शन समुच्चय।
53. आचार्य शांत रक्षित कृत – तत्त्वसंग्रह, 629–630
54. वरवर मुनि कृत – तत्त्वत्रय भाष्य।
55. शिवार्कमणिदीपिका, 2–2–19
56. आचार्य कुन्दकुन्द कृत – पंचास्तिकाय–गाथा–6
57. काल का द्रव्यत्व नित्य सिद्ध है – "खादान्यात्मा मनः कालो दिशश्च द्रव्य संग्रहः।" (चरक संहिता– सूत्र स्थान 1–48)
58. "काल एवहि पुरुषानर्थानर्थयोर्जय पराजयोः सुखदुःखयोश्च स्थापयति।" (कामसूत्र साधाराधिकरण–2 अ०)